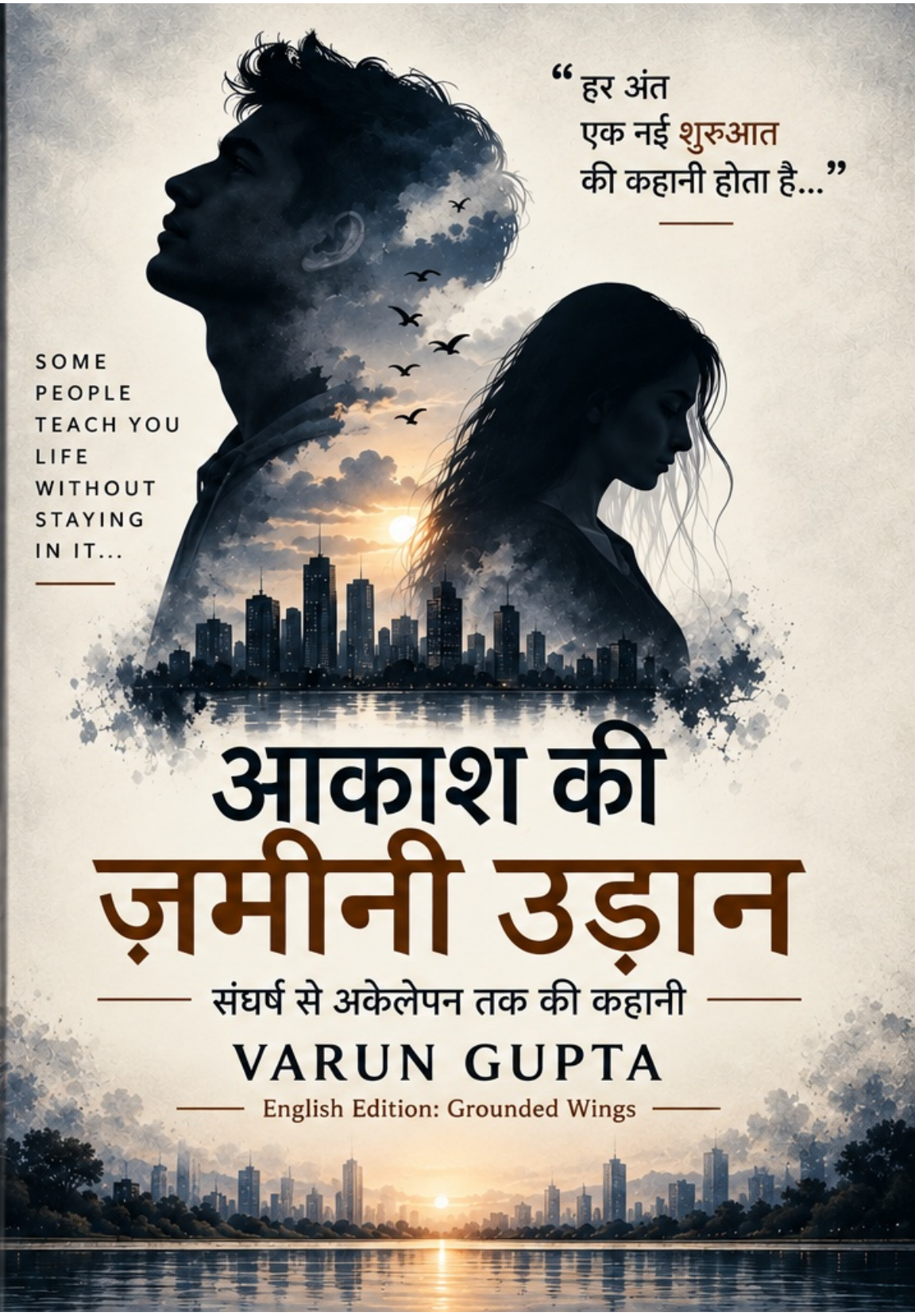
“हर अंत
एक नई शुरुआत
की कहानी होता है...”
SOME
PEOPLE
TEACH YOU
LIFE
WITHOUT
STAYING
IN IT...
आकाश की
ज़मीनी उड़ान
संघर्ष से अकेलेपन तक की कहानी
VARUN GUPTA
English Edition: Grounded Wings

Aakash Ki Zameeni Udaan

REVIEW & BOOK FAIR CONSIDERATION
A Hindi autobiographical book by Varun Gupta

Book introduction

A young man's hopes for education and independence are interrupted by serious illness. Treatment, a kidney transplant, financial strain and family sacrifices change the course of his life. His determination to rebuild is sustained by the people beside him, while love, loss and loneliness complicate what it means to win.

Based on the author's personal experiences, the book brings together the struggle to survive, the effort to support a family and the emotional cost of relationships that do not remain. Its central question is simple: what does victory feel like when something deeply important is still missing?

Reading audience
Readers of Hindi memoirs and personal narratives about family, resilience, relationships and rebuilding life. This is a personal account, not medical guidance.

Author
Varun Gupta is a writer from Firozabad and the founder of Veena Studios. This book draws on his own life experiences.

Book details
Language: Hindi | Format: Paperback, 6 x 9 inches
Publisher/imprint: Veena Studios | Catalogue: VS-001
ISBN: 978-93-345-2567-0 | Listed MRP: INR 379
Available through Pothi.com

Selected reading guide

Four lenses on the same life. These are selected excerpts, not complete chapters. Original wording and printed page numbers are retained. Gaps between selections are intentional.

1. The boy before the struggle - Chapter 1, pages 13-15
The narrator introduces his younger self, his stubbornness and the everyday desires that precede the upheaval.

2. Rebuilding through work - Chapter 5, pages 38-40
After treatment and restrictions, he tries to earn, contribute to the family business and reclaim independence. Illness also begins to affect prospects for relationships.

3. Friendship becomes love - Chapter 7, pages 57-62
A relationship grows through conversation, humour and small personal gestures. This passage shows warmth alongside the larger struggle.

4. Recovery and emotional distance - Chapter 12, pages 102-104
After another transplant, physical recovery coexists with isolation and a growing distance in the relationship. The excerpt stops before the final outcome.

Questions for consideration
1. Does the writing and story suit your readers?
2. Would you consider an honest review or editorial assessment?
3. If you participate in NDWBF 2027, could you consider representing the existing edition without an upfront display fee, or introduce the author to a suitable exhibitor?

This is an author-provided introduction, not an independent review. No positive review is expected or required. No publishing rights or exclusivity are offered by this enquiry. Full book available on request.

अध्याय 1

ज़िद्दी लड़का

नमस्ते दोस्तों,

मेरा नाम आकाश है।

यह मेरी अपनी कहानी है, मेरी अपनी ज़ुबानी।

मैं घर का अकेला लड़का था।

घर खाली नहीं था, भरा-पूरा परिवार था—माँ, पापा, दादा-दादी, दो बहनें, पाँच बुआएँ। सब थे। पर लड़का मैं अकेला था, इसलिए शायद मेरी हर बात का कुछ ज़्यादा ही असर होता था। और मुझे भी पता था, अगर ज़िद करनी है तो किसके सामने करनी है।

मेरी ज़िद अलग ही थी।

क्योंकि मैं एक नासमझ और लड़कपन से भरा छोटा बच्चा था, जिसे नहीं पता था कि क्या सही है और क्या गलत। बस जो चाहिए था, वो चाहिए था। शायद सभी बच्चे ऐसे ही होते हैं और घर के माँ-बाप उनके सपने पूरे करने की कोशिश करते हैं, चाहे बजट हो या न हो। बच्चों की ख़ुशी के लिए उन्हें करना ही पड़ता है। मेरे साथ भी कुछ ऐसा ही था।

याद है, एक बार मेरा बर्थडे था। स्कूल जाने से पहले मैंने बोल दिया, “मुझे कैरम बोर्ड चाहिए।”

कोई बड़ा तोहफा नहीं, पर उस वक़्त मेरे लिए वही सब कुछ था। स्कूल से वापस आया तो देखा पापा पहले से लेकर बैठे हैं। मैं खुश।

फिर हाई स्कूल में आया। कोचिंग जाने के लिए साइकिल से जाना पड़ता था। गर्मी, थकान। एक दिन मैंने लंच बॉक्स ही नहीं लिया। स्कूल जाते हुए बोल गया, “मुझे नई बाइक चाहिए।”

गुस्से में था, या ज़िद में, पता नहीं। शाम को घर आया तो दादा जी ने पापा से कहा, “जाओ, बाइक ले आओ।”

अगले दिन बाइक आ गई। उस वक़्त मुझे लगता था, ये तो नॉर्मल है। जो माँगा, मिल गया।

एक बार तो हद ही कर दी। सारे रिश्तेदार वैष्णो देवी जा रहे थे। मुझे भी जाना था। सबने मना किया। मैंने किसी की नहीं सुनी। ज़िद पकड़ ली और ज़बरदस्ती चला गया।

उस वक़्त सही-गलत का कोई हिसाब नहीं था। बस जो चाहिए, दादा-दादी के सामने ज़िद करो, काम हो जाएगा।

अकेला लड़का होने का यही मतलब था। सब बहुत प्यार करते थे, हद से ज़्यादा फ़िक्र करते थे। “कहाँ जा रहा है? क्या कर रहा है? ये मत कर, वो मत कर।”

कभी-कभी ये प्यार थोड़ा भारी लगता था, पर अंदर से अच्छा भी लगता था कि सब अपना है।

उस वक़्त मैं 15-16 साल का था। न मोबाइल का ज़माना था, न इंटरनेट का। लाइफ़ सिंपल थी। स्कूल से घर, घर से पड़ोस के बच्चों के साथ खेलना। न कोई जिम्मेदारी, न कोई भागमभाग।

एक सुकून भरी लाइफ़।

उस उम्र में अपने भविष्य को लेकर भी न जाने कितने सपने थे। आगे पढ़ना है, कुछ बनना है, अपनी ज़िंदगी अपने तरीके से जीनी है। वो उम्र ही ऐसी थी जब लगता था कि पूरी ज़िंदगी अभी सामने पड़ी है और अपने हर सपने को पूरा करने के लिए बहुत वक़्त है।

पर पता नहीं था कि मेरी ज़िंदगी का वो सुकून बहुत जल्दी ख़त्म होने वाला था।

17 साल की उम्र में ज़िंदगी ऐसा झटका देने वाली थी, जो मेरे सारे सपनों और उस सुकून भरी ज़िंदगी को एक ही पल में बदलकर रख देगा।

“उम्र छोटी थी, इसलिए इच्छाएँ बड़ी लगती थीं; समझ छोटी थी, इसलिए हर ज़िद सही लगती थी।”

अध्याय **1** समाप्त

अध्याय 5

संघर्ष के बीच एक मुलाक़ात

जैसा कि मैंने पहले भी कहा था, मैं बस एक बार उस कमरे और उन पाबंदियों से बाहर निकलना चाहता था। मन में एक ही बेचैनी थी—कब डॉक्टर कहें कि अब मैं बाहर जा सकता हूँ, काम कर सकता हूँ और अपने परिवार की जिम्मेदारियों में हाथ बँटा सकता हूँ।

आखिरकार लगभग एक साल बाद वो दिन आ ही गया।

मुझसे कहा गया कि अब मैं बाहर निकल सकता हूँ, बस मास्क लगाना है, संक्रमण से बचना है और अपनी सेहत का पूरा ध्यान रखना है।

मेरे लिए ये सिर्फ़ घर से बाहर निकलने की इजाज़त नहीं थी। ये अपनी ज़िंदगी में वापस लौटने का मौका था।

लेकिन मेरे दिमाग में उस समय घूमना-फिरना या दोस्तों के साथ समय बिताना नहीं था। पिछले कुछ वर्षों ने मेरी सोच बदल दी थी। मेरे सामने सबसे बड़ी चिंता थी—अपने परिवार को आर्थिक रूप से सहारा देना।

जब मैं पहली बार अपने काम पर पहुँचा और वहाँ की हालत को ध्यान से देखा, तो समझ आया कि मुश्किलें सिर्फ़ मेरी बीमारी तक सीमित नहीं थीं।

हम आज भी पुरानी मशीनों पर काम कर रहे थे, जबकि बाज़ार काफ़ी आगे निकल चुका था। नई तकनीक आ चुकी थी और दूसरे लोग आधुनिक मशीनों का इस्तेमाल कर रहे थे। हमारी पुरानी मशीनों के कारण धीरे-धीरे काम मिलना कम होता जा रहा था।

मैंने सोचा—अगर हमें आगे बढ़ना है, तो हमें भी नई तकनीक अपनानी होगी।

मैंने पापा से बात की। उन्होंने भी बात सुनी, लेकिन फिर बोले—"बेटा, हम पहले से ही कर्ज़ में हैं। ये मशीन बहुत महँगी है। चाहकर भी अभी इसे नहीं खरीद सकते।"

मैंने उन्हें समझाने की कई कोशिशें की। बार-बार इस बारे में बात करता रहा, लेकिन उनकी मजबूरी थी। अपनी जगह सही थी। हमारे ऊपर पहले से कर्ज़ था और ऐसी स्थिति में नया कर्ज़ लेना आसान नहीं था।

आखिरकार मुझे लगा कि अगर अपने काम को आगे नहीं बढ़ा सकता, तो कहीं और काम करके ही सही, घर में कुछ पैसा तो लाना होगा।

इसी दौरान मुझे एक कॉलेज में क्लर्क की नौकरी का अवसर मिला। उस समय मेरे लिए काम छोटा या बड़ा नहीं था। मेरे मन में बस इतना था कि कुछ तो करना है। मैंने नौकरी के लिए हाँ कर दी।

वो एक महिला डिग्री कॉलेज था।

शायद मुझे उस समय अंदाज़ा भी नहीं था कि ये नौकरी मुझे सिर्फ़ कुछ पैसे ही नहीं देने वाली थी, बल्कि मेरी ज़िंदगी का एक ऐसा हिस्सा भी वापस ला रही थी, जो पिछले चार सालों में कहीं दब-सा गया था—दोस्ती।

साल 2007 के बाद अब 2011 में पहली बार मैं फिर से लोगों के बीच आया था। चार साल... न दोस्त थे, न उनके साथ घूमना-फिरना। ज़िंदगी जैसे अस्पताल, दवाइयों, इलाज और परेशानियों के बीच सिमटकर रह गई थी।

इसलिए जब कॉलेज में नए लोगों से मिलना शुरू हुआ, तो एक अलग ही ख़ुशी महसूस हुई। वहाँ कुछ शिक्षक थे, दोस्ती हुई। कुछ छात्राएँ भी ऐसी थीं, जो खुद आगे बढ़कर मुझसे बात करतीं और धीरे-धीरे दोस्त बन गईं।

मुझे महसूस हुआ कि फिर से लोगों के बीच हँसने लगा था। शायद मैंने एक बार फिर मुस्कुराना शुरू कर दिया था।

धीरे-धीरे ज़िंदगी पटरी पर लौटती हुई दिखाई देने लगी। सुबह कॉलेज की नौकरी करता और शाम को पापा के साथ अपने काम में हाथ बँटाता। हम दोनों मिलकर मेहनत करने लगे और धीरे-धीरे हमारे काम में भी कुछ सुधार आने लगा।

इसी दौरान हमने अपनी बड़ी दीदी की शादी की। देखते-देखते लगभग दो साल गुजर गए।

ये दो साल शायद लंबे समय बाद हमारी ज़िंदगी के कुछ सामान्य साल थे। ऐसा लगने लगा था कि ज़िंदगी में इतने वर्षों के बाद अब शायद चीजें ठीक हो रही हैं।

अब घर में मेरी शादी की बातें भी शुरू होने लगीं थीं। रिश्ते आने लगे।

लेकिन हमने एक बात शुरू से तय कर रखी थी—किसी से कुछ छिपाना नहीं है। जब भी कोई रिश्ता आता, हम सबसे पहले मेरी बीमारी और ट्रांसप्लांट के बारे में साफ-साफ बता देते। अक्सर इतना सुनते ही लड़की वाले पीछे हट जाते।

कहीं न कहीं थोड़ी मायूसी ज़रूर होती थी, लेकिन ज़िंदगी अब धीरे-धीरे रफ्तार पकड़ रही थी। इसलिए मैंने भी इसे ज़्यादा दिल पर नहीं लिया। बस एक बार को छोड़कर।

एक परिवार की तरफ से रिश्ता आया। उन्हें मेरी स्थिति के बारे में सब कुछ बता दिया गया था और इसके बावजूद वो रिश्ते के लिए तैयार थे। हमने भी सोचा—जब सामने वाले परिवार को सब कुछ पता है और फिर भी उन्हें कोई आपत्ति नहीं है, तो हमें भी आगे बात करनी चाहिए।

एक दिन लड़की से मिलने का कार्यक्रम तय हुआ। मुझे आज भी याद है, उससे पहले मैंने अपने परिवार से कहा था—"अगर लड़की हमें थोड़ी कम समझ भी आए तो कोई बात नहीं। जब वो मेरी स्थिति जानने के बाद भी तैयार है, तो हमें भी छोटी-छोटी बातों में नहीं पड़ना चाहिए।"

आखिरकार मैं उस लड़की से मिला। मैंने उससे भी अपनी स्थिति के बारे में साफ-साफ बात की। जो सच था, वही बताया। लेकिन मेरी बात सुनने के बाद उसने इस रिश्ते के लिए मना कर दिया। वो चली गई।

शायद किसी के लिए ये सिर्फ़ एक रिश्ता टूटना था... लेकिन मेरे लिए उस दिन बात सिर्फ़ एक रिश्ते की नहीं थी।

पहली बार मेरी बीमारी ने मुझे एक अलग तरह से चोट पहुँचाई थी। अब तक इसी बीमारी ने मुझसे मेरी पढ़ाई छीनी थी, कॉलेज छुड़वाया था, दोस्तों से दूर किया था, अस्पतालों के चक्कर लगवाए थे और मेरे परिवार को आर्थिक परेशानियों में धकेला था।

लेकिन उस दिन पहली बार मुझे लगा कि शायद ये बीमारी मेरे आने वाले रिश्तों और मेरी निजी ज़िंदगी के फैसलों के बीच भी खड़ी होने वाली है।

मैं बहुत हताश हुआ। मन में बार-बार एक ही सवाल आ रहा था—एक बीमारी की वजह से मुझे अभी और क्या-क्या देखना बाकी है?

खैर... ज़िंदगी किसी एक ठोकर पर रुकती नहीं है। मैंने भी उस बात को पीछे छोड़ने की कोशिश की और अपनी नौकरी तथा काम में फिर से लग गया।

अध्याय 7

प्यार की शुरुआत, एक अनचाही आहट के साथ

वो अपने घर वापस चली गई थी और मैं एक अधूरे-से मन के साथ उसे याद करता हुआ फिर अपने काम पर लौट आया।

काम तो कर रहा था, लेकिन दिमाग में बार-बार वही सवाल घूम रहे थे—

क्या वो सच में मुझे याद रखेगी? क्या अब हमारी बात होगी? क्या मुझे उसे खुद कॉल करना चाहिए?

फिर मन में एक और ख्याल आता—कहीं मैं खुद ही बार-बार फोन करूँ और वो मुझे कोई चिपकू इंसान न समझ ले।

बस इन्हीं सवालों के बीच दिन निकल गया।

रात हुई और मैं अब भी उसी के बारे में सोच रहा था कि अचानक फोन बजा।

उसका कॉल था।

स्क्रीन पर उसका नाम देखते ही न जाने क्यों मन फिर से खुश हो गया। कॉल उठाया तो उधर से आवाज़ आई—

“क्या कर रहे हो?”

मैंने भी बिना ज़्यादा सोचे कह दिया—

“बस... तुमको याद।”

वो तुरंत बोली—

“हाँ-हाँ, बस करो। इतना ही याद कर रहे थे तो कॉल क्यों नहीं किया?”

मैंने कहा—

“आपने परमिशन कहाँ दी थी? हम तो आपकी परमिशन का इंतज़ार कर रहे थे।”

वो हँसते हुए बोली—

“अच्छा! आप तो बड़े आज्ञाकारी इंसान हैं।”

और शायद वहीं से हमारी बातों का वो दौर शुरू हुआ, जिसमें अब फोन करने के लिए किसी बहाने की ज़रूरत नहीं थी।

धीरे-धीरे हमारी बातें आगे बढ़ने लगीं...

और मुझे तब कहाँ पता था कि ये छोटी-छोटी बातें कब मेरे दिन का सबसे खूबसूरत हिस्सा बनने वाली थीं।

अब दिनभर काम पर रहते हुए भी उससे चैट होती रहती और रात को कमरे पर पहुँचते ही हमारी बातें कॉल पर शुरू हो जातीं।

धीरे-धीरे ये बातें सिर्फ़ बातें नहीं रहीं। हमारी नज़दीकियाँ बढ़ने लगी थीं। बहुत कम समय में हम एक-दूसरे के इतने करीब आ गए थे कि कभी-कभी लगता ही नहीं था कि हमारी मुलाकात अभी कुछ समय पहले हुई है। ऐसा लगता था जैसे हमारा रिश्ता बहुत पुराना हो... जैसे हम एक-दूसरे को न जाने कब से जानते हों।

अब हम रोज़ बात करते थे—दिन में भी और रात में भी।

और हमारी बातें थीं कि ख़त्म होने का नाम ही नहीं लेती थीं।

ज़िंदगी के उस पड़ाव पर मैं फिर से बहुत खुश रहने लगा था। इधर काम भी अच्छा चलने लगा था। ज़िंदगी जैसे वापस पटरी पर आ गई थी। अब मेरी ज़िंदगी में एक लड़की भी थी जिससे मैं हर रोज़ बातें करता था, जिसका इंतज़ार करता था।

मेरे स्कूल टाइम के पुराने दोस्तों का भी मेरे साथ उठना-बैठना फिर से शुरू हो चुका था।

लग रहा था कि ज़िंदगी धीरे-धीरे मुझे वो सब वापस दे रही है जो कहीं पीछे छूट गया था।

इसी बीच एक दिन मुझे बुखार हो गया।

तब मुझे कहाँ पता था कि वो बुखार अपने साथ मेरे लिए एक सुनहरा मौका लेकर आया है।

सर्दियों का समय था। रात को हम हमेशा की तरह फोन पर बातें कर रहे थे। बुखार की वजह से मुझे बहुत ठंड लग रही थी और बात करते-करते मेरी आवाज़ काँप रही थी।

लेकिन मैंने उसे बताया नहीं।

कुछ देर बाद उसने खुद ही पकड़ लिया।

“क्या हुआ? तुम्हारी आवाज़ क्यों काँप रही है?”

अब पता नहीं बुखार ज़्यादा था या उस रात मेरी किस्मत कुछ ज़्यादा ही साथ दे रही थी। मैंने बात को थोड़ा फ्लर्ट करते हुए कहा—

“अब तुमसे बात करते हुए डर लगता है यार।”

वो तुरंत बोली—

“डर? वो क्यों? मुझसे बात करते हुए तुम्हें किस बात का डर लग रहा है?”

बस... मुझे रास्ता मिल गया।

मैंने कहा—

“बहुत दिन से तुमसे कुछ कहने का मन कर रहा है, लेकिन डर की वजह से बोल नहीं पाया। आज हिम्मत करके बोलने का मन हो रहा है... इसलिए आवाज़ काँप रही है। बस सोच रहा हूँ, कहीं तुम नाराज़ न हो जाओ।”

उसने कहा—

“मैं नाराज़ क्यों होऊँगी? क्या कहना है, बोलो।”

अब मुझे लगने लगा था कि मेरी बात सही दिशा में जा रही है।

शायद वो भी समझ चुकी थी कि मैं क्या कहने वाला हूँ।

मैंने ज़्यादा वक़्त नहीं लिया।

“मैं तुमसे प्यार करता हूँ।”

आखिर वो बात कह ही दी जिसे इतने दिनों से अपने अंदर दबाकर बैठा था।

फिर मैंने उससे कहा—

“बस बोल नहीं पाता था तुमसे ये सब। डर था कि कहीं ये कहने से हमारी दोस्ती खराब न हो जाए।”

वो बोली—

“हट पागल! दोस्ती क्यों खराब होगी हमारी?”

उसका इतना कहना था कि मेरी हिम्मत और बढ़ गई।

मैंने तुरंत पूछा—

“इसका मतलब तुम भी मुझसे प्यार करती हो?”

वो बोली—

“ना... ऐसा कुछ नहीं है पागल। हम बस अच्छे दोस्त हैं।”

लेकिन अब मैं कहाँ पीछे हटने वाला था।

मैंने कहा—

“मैंने तो सुना है लड़कियों की ‘ना’ में ही ‘हाँ’ होती है।”

वो हँसने लगी—

“ये कहाँ सुना तुमने?”

अब मुझे समझ आ चुका था कि वो सीधे-सीधे हाँ नहीं बोलने वाली। शायद अब उसे मुझे थोड़ा परेशान करने में मज़ा आने लगा था।

मैंने कहा—

“अच्छा, तो जो तुम्हारे मन में है वही बोल दो।”

उसने हँसते हुए कहा—

“दोस्त...”

मैंने भी हँसकर कहा—

“ओह... दोस्त! और ये बताओ, सच बोल क्यों नहीं पा रही हो? वैसे तो बड़ी हिम्मत दिखाती हो। यहाँ सच बोलने में कैसा डर?”

वो तुरंत बोली—

“हट! मैं किसी से नहीं डरती।”

मैंने कहा—

“तो फिर बोलो... जो मन में है।”

और आखिर उसने कहा—

“I hate you.”

हाँ...

उसने “I love you” नहीं कहा था।

उसने कहा था—

“I hate you.”

लेकिन उस रात मैं उसके उस “I hate you” का असली मतलब समझ चुका था।

कुछ रिश्तों में प्यार की शुरुआत “हाँ” से नहीं होती। कभी-कभी एक मुस्कुराती हुई “ना”, एक “पागल” और एक प्यार से कहा गया “I hate you” भी बहुत कुछ कह जाता है।

और इस तरह हमारी दोस्ती अब धीरे-धीरे प्यार में बदलने लगी।

अब ज़िंदगी से मेरी शिकायतें भी कम होने लगी थीं।

क्योंकि मैं खुश था।

इसी बीच उसके भाई की शादी आ गई। अब मेरे घर में भी उसके बारे में पता था कि हम दोनों एक-दूसरे को पसंद करते हैं। लेकिन उसके परिवार के लिए मैं अभी उसका एक दोस्त ही था।

मुझे आज भी वह दिन बहुत अच्छी तरह याद है। शादी का कार्ड देने वह मेरे घर आई थी। उसी दिन उसने मुझे एक ऐसा सरप्राइज़ दिया, जिसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

मेरे लिए यह बात इसलिए भी ख़ास थी, क्योंकि आमतौर पर ऐसी पहल लड़कों से जोड़ी जाती है। मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि वह मेरे घर आएगी, मेरे सामने घुटनों

के बल बैठेगी और बिल्कुल किसी लड़के की तरह अपने हाथों से मुझे अंगूठी पहनाएगी।

कुछ पल ऐसे होते हैं जो समय बीत जाने के बाद भी पुराने नहीं पड़ते। मेरे लिए वह भी ऐसा ही एक पल था। उस समय मैं शायद अपनी ख़ुशी को शब्दों में ठीक से व्यक्त भी नहीं कर पाया था, लेकिन भीतर कहीं वह लम्हा हमेशा के लिए दर्ज हो गया।

आज भी जब उस दिन को याद करता हूँ, तो पूरा दृश्य किसी रील की तरह मेरी आँखों के सामने चलने लगता है—उसका मेरे सामने घुटनों के बल बैठना, मेरे हाथ में अंगूठी पहनाना और उस पल का एहसास। वह मेरे जीवन के उन बेहद ख़ास पलों में से एक है, जिन्हें समय चाहकर भी धुंधला नहीं कर पाया।

और उसी शादी के बहाने पहली बार मुझे उसके घर जाने का मौका मिला।

पहली बार जब मैं उसके घर के दरवाज़े पर पहुँचा, तो मुझे लेने वो खुद गेट पर आई।

लेकिन मेरे लिए एक और सरप्राइज़ तैयार था।

वो मेरे लिए अपनी ड्रेस से मैच करता हुआ सूट खुद लेकर आई थी।

उस शादी में हम दोनों ने मैचिंग कपड़े पहने।

उस दिन हमें देखकर ऐसा लग रहा था जैसे हम दो अलग लोग नहीं, बल्कि एक ही कहानी के दो हिस्से हों।

शादी में उसके अपने दोस्त थे, रिश्तेदार थे, परिवार के लोग थे... लेकिन वो लगभग पूरी शादी मेरे साथ ही घूमती रही।

उस भीड़ में भी जैसे हमारी अपनी एक अलग दुनिया बनी हुई थी।

और शायद मेरे लिए वो सिर्फ़ उसके भाई की शादी नहीं थी।

पहली बार मैं उसके घर में था। उसके परिवार के बीच था। उसकी दुनिया को इतने करीब से देख रहा था।

एक ऐसा रिश्ता, जिसकी शुरुआत कुछ फोन कॉल्स और मज़ाक से हुई थी, अब धीरे-धीरे ज़िंदगी का हिस्सा बनता जा रहा था।

पहले ट्रांसप्लांट से लेकर यहाँ तक पहुँचने में ज़िंदगी ने न जाने कितनी बार मुझे गिराया था। कभी शरीर ने साथ छोड़ा, कभी उम्मीद ने, कभी रास्ते बंद हुए... लेकिन हर बार कोई न कोई हाथ मुझे दोबारा खड़ा करने के लिए मौजूद रहा।

और ये सब होते-होते कैलेंडर पर अक्टूबर 2023 आ चुका था।

मैं घर लौट चुका था।

शरीर में एक नई किडनी थी...

मन में एक नई उम्मीद थी...

और मुझे लग रहा था कि शायद अब मेरी ज़िंदगी की सबसे बड़ी लड़ाई ख़त्म हो चुकी है।

लेकिन मुझे कहाँ पता था कि मेरी कहानी का असली इम्तिहान अभी बाकी था...

हाँ... असली इम्तिहान मेरी बीमारी नहीं थी। असली इम्तिहान था — मेरा प्यार।

जिस प्यार ने मुझे उस वक़्त संभाला था जब मैं अपने पैरों पर खड़ा तक नहीं हो सकता था। जिसने मेरे डायलिसिस, अस्पताल, टूटती उम्मीदों और मौत जैसे डर के बीच भी मेरा हाथ नहीं छोड़ा था।

अब मैं ट्रांसप्लांट कराकर घर लौट चुका था।

जिस भविष्य को कभी मैं ख़त्म मान बैठा था, वो भविष्य एक बार फिर मेरे सामने खड़ा था।

लेकिन इस बीच बहुत कुछ बदल चुका था।

जिस लड़की ने मेरी ज़िंदगी के सबसे मुश्किल दिनों में हर पल मेरा साथ दिया था, अब वही धीरे-धीरे बदलती हुई-सी महसूस होने लगी थी।

अब मैं फोन करता तो वो बात करती थी, लेकिन उसकी तरफ से आने वाले फोन धीरे-धीरे कम होने लगे थे।

जब भी मैं पूछता — “क्या हुआ? सब ठीक है ना?” — तो उसका जवाब लगभग एक ही होता -

“कुछ नहीं... बस काम की थकान है।”

और सच कहूँ तो उसकी बात गलत भी नहीं थी।

सुबह जल्दी उठना, घर का काम करना, फिर स्कूल जाना, वहाँ से लौटकर दोबारा घर के कामों में लग जाना और थककर सो जाना...

अब उसकी ज़िंदगी लगभग ऐसी ही हो चुकी थी।

लेकिन उधर मेरी ज़िंदगी बिल्कुल उलट थी।

मैं ट्रांसप्लांट के बाद घर पर था। शरीर को आराम की ज़रूरत थी, इसलिए ज्यादातर वक़्त बिस्तर पर ही गुजरता था।

और बिस्तर पर लेटे-लेटे अब मैं उसके फोन का इंतज़ार करने लगा था।

पहले ये इंतज़ार कुछ मिनटों का होता...

फिर मिनट घंटों में बदलने लगे...

और धीरे-धीरे घंटे दिनों में।

मैं पूरा दिन घर में अकेला बैठा उसके फोन का इंतज़ार करता रहता और उधर शायद उसकी ज़िंदगी में मेरे लिए वक़्त कम होता जा रहा था।

यहीं से हमारे बीच छोटी-छोटी बातों पर तकरार भी होने लगी।

मेरे मन में बार-बार एक ही बात आती -

“मैं अपनी ज़िंदगी के सबसे व्यस्त दिनों में भी उसके लिए समय निकाल लेता था... तो क्या अब वो मेरे लिए थोड़ा-सा वक़्त भी नहीं निकाल सकती?”

शायद मेरी सोच उस समय सही थी या गलत, ये मैं नहीं जानता।

लेकिन मेरी हालत ऐसी थी कि मेरे पास वक़्त ही वक़्त था... और उस पूरे वक़्त में मेरा मन सिर्फ़ उसी को तलाशता था।

सबसे ज़्यादा तकलीफ मुझे एक और बात की थी।

एक वक़्त था जब वो इतनी दूर से भी भागकर मुझसे मिलने चली आती थी।

और अब...

इतने बड़े ऑपरेशन के बाद मैं घर वापस आ चुका था। बीच में रविवार भी आते रहे, लेकिन वो एक बार भी मुझसे मिलने नहीं आई।

मैं हर बार सोचता -

शायद इस रविवार आ जाएगी...

फिर रविवार गुजर जाता।

और मैं अगले रविवार का इंतज़ार करने लगता।

धीरे-धीरे वो इंतज़ार मेरे अंदर एक बेबस-सी बेचैनी में बदलने लगा था।

क्योंकि दुनिया के लिए शायद वो सिर्फ़ एक लड़की थी जिससे मैं प्यार करता था...

लेकिन मेरे लिए उसके क्या मायने थे, ये शायद मेरे अलावा कोई नहीं समझ सकता था।

अब इन्हीं बातों को लेकर हमारे बीच होने वाली बहस धीरे-धीरे बढ़ने लगी थी।

पहले जो शिकायतें कुछ शब्दों में ख़त्म हो जाती थीं, अब वही लंबी बहसों में बदलने लगी थीं।

मैं उससे समय माँगता था...

और शायद वो मुझसे कुछ ऐसा छिपा रही थी, जिसे कहने की हिम्मत अब तक नहीं जुटा पाई थी।

फिर एक दिन...

ऐसी ही एक बहस के बीच वो सच बोल बैठी।

उसने कहा -

“मेरी माँ नहीं चाहतीं कि हमारी शादी हो।”

उसके पापा जब ज़िंदा थे, तब उन्होंने भी हमारे रिश्ते के लिए मना कर दिया था।

उनका कहना था -

Contact & book availability

Varun Gupta | Veena Studios
ISBN: 978-93-345-2567-0
Paperback MRP: INR 379 | Available on Pothi.com
Email: aakashkiudaan26@gmail.com
Website: veenastudio.in

The author seeks honest reading feedback and an opportunity to reach appropriate readers. Please confirm your interest before requesting a physical review copy. Any fees, stock requirements, sales terms and event participation must be agreed separately.